THE ECONOMIC TIMES

Date:08-07-23

Cool It, We Gotta Beat the Heat

Smart measures can bring temperatures down

ET Editorials

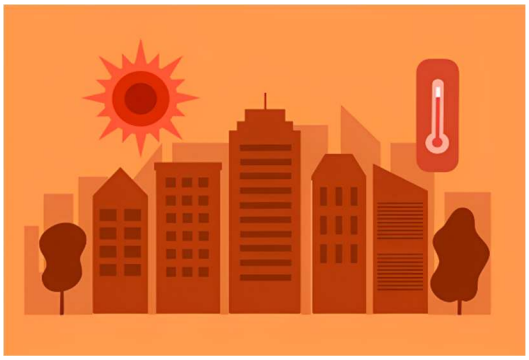

Last Monday was the hottest day, with an average worldwide temperature of 17. 01° C. Promptly, this new record was surpassed on Tuesday, which, in turn, was broken when average worldwide temperature reached 17. 23° C on Thursday. Heat and ever-rising temperatures are now part of our lived reality, making cooling a necessity.

Heat stress reduces productivity through increased mortality and health impacts and loss of working hours. By 2050, it is estimated to cost as much as 2. 8% of India's GDP. With rising incomes and drop in prices due to growing demand, sales of cooling systems including air conditioners (ACs) have increased. They will continue to do so. Today, only 13% of Indian households have ACs. By 2040, this will rise to 69%. As more people are able to buy some respite from the heat, AC manufacturers will laugh their way to the bank. But there are consequences.

The rise of urban heat islands due to increased AC use will drive up temperatures in urban areas, altering natural cooling and precipitation patterns. Greenhouse gas (GHG) emissions from cooling are estimated to account for at least 7% of India's total emissions by 2037. The challenge is to meet rising cooling needs in an energy-efficient manner that does not increase GHG emissions. The India Cooling Action Plan, launched in 2019, provides a policy framework. It aims at reducing cooling energy requirements by 25-40% by 2037-38. It will require adoption of passive and active measures. These include better construction using design, building materials, landscaping and cool roofs to reduce cooling needs. The adoption of systems like district cooling — creating a network of buildings cooled through a central unit — will bring in energy efficiencies and reduce costs. These efforts must be accompanied by increased greening of habitations. Tackling rising heat will require changes in the way we plan and build our towns and cities, and the way we travel. It is also an economic opportunity — cooling requirements are expected to create up to $1. 6 trillion in investment opportunities.

THE HINDU

Date:08-07-23

Ominous signs

India must calibrate its public diplomacy on Khalistan issue to better effect

Editorial

Ahead of planned rallies by pro-Khalistan separatists in the U.S., the U.K., Canada and Australia on July 8 that target Indian diplomatic missions and diplomats, the Indian government has taken steps to speak to officials in these countries for added security and vigilance. The issue was raised by National Security Adviser Ajit Doval in talks with his British counterpart in Delhi on Friday, and was the subject of calls between the Ministry of External Affairs (MEA) and its counterparts in all partner countries, requesting pre-emptory action. Posters in these countries have billed the protests as "Kill India" and "Khalistan Freedom" rallies, exhorting supporters to march to Indian missions. What is worrying is that the posters sport the photographs of India's top diplomats posted in these countries. The protests — after the attacks on Indian missions, arson attempts and vandalism — indicate a sharp uptick in separatist activity overseas and have left New Delhi concerned. However, they should be of far greater concern to the countries incubating these groups, as they involve their citizens. The rallies planned for Saturday put the respective governments on notice — to ensure adequate protection to Indian diplomatic interests, as obligated under international conventions. In addition, it is a test of their resolve to investigate groups threatening violence, gathering and sharing intelligence on any organisations supporting them to plan or carry out attacks or a terror strike like the 1985 bombing of an Air India flight. Above all, these governments must not use "freedom of speech" tropes as a cover for failing to prevent criminal acts.

While the onus remains on the four countries where pro-Khalistan attacks have increased, New Delhi must also reconsider its public diplomacy on the issue. Repeatedly calling out foreign governments for their failure to respond to Indian requests, freezing diplomatic contact, tit-for-tat retaliatory measures such as downgrading security for the British High Commission might be demonstrative, but hardly diplomatically effective. In addition, with the exception of the U.S, the MEA has regularly summoned top diplomats of the countries named, to démarche them over attacks (there is often no distinction made between violent attacks and graffiti). While the government is justified in raising concerns over the safety of Indian citizens and Indian property, it must leave law and order issues and policing to the sovereign government in that country. New Delhi's vocal protests on behalf of the Indian diaspora and community centres targeted by pro-Khalistan groups, for example, fail to recognise that, most often, the victims and perpetrators are of Indian origin. Given the rising protests and the alarming nature of the threats, the need of the hour is more cooperation, and not brinkmanship, between the governments, and a mechanism to share information, intelligence and discuss solutions to growing violence by such groups.

दैनिक भास्कर

Date:08-07-23

बाल- सुरक्षा के प्रयासों पर भारत की प्रशंसा के मायने

संपादकीय

विगत 12 सालों में पहली बार यूएन ने भारत को उन देशों की लिस्ट से बाहर किया है, जहां बच्चों का सशस्त्र उपद्रव के लिए प्रयोग होता है। इस लिस्ट में पाकिस्तान सहित बुर्कीना फासो, कैमरून, नाइजीरिया, फिलीपींस और चाड जैसे देश आते हैं। दरअसल यूएन ने पाया कि तमाम उपद्रवग्रस्त देश के हथियारबंद संगठन बच्चों के मन-मस्तिष्क को नियंत्रित कर उन्हें 'लोन वुल्फ' या आत्मघाती दस्ते के रूप में इस्तेमाल करते हैं। पाकिस्तान के गरीब इलाकों से कट्टरपंथी संस्थाएं इन बच्चों को मजहबी तालीम के बहाने मां-बाप से ले लेती हैं और उन्हें धर्मान्ध कर विश्वास दिलाती हैं कि उन्हें दुनिया में एक खास मकसद पूरा करने के लिए भेजा गया है। भारत के संदर्भ में यूएन की टीम ने पाया कि पॉक्सो, पेलेट गन के प्रयोग पर पाबंदी, जुवेनाइल जस्टिस कानून का अनुपालन आदि कुछ सराहनीय प्रयास हुए हैं। सरकार ने यूएन महासचिव की इस रिपोर्ट पर खुशी जाहिर की। कश्मीर में पाकिस्तानी शह पर आतंकी संगठन अकसर बच्चों का इस्तेमाल दहशतगर्दी के लिए करते रहे हैं। लिहाजा यूएन की रिपोर्ट को इस परिप्रेक्ष्य में देखना ज्यादा समीचीन होगा। यहां सरकार को भी नहीं भूलना चाहिए कि जहां यूएन की इस रिपोर्ट पर अपनी पीठ थपथपा रही है वहीं इस संस्था की तमाम नकारात्मक रिपोर्ट्स खारिज की गई हैं।

Date:08-07-23

समान नागरिक संहिता पर सच को जानना जरूरी है

विकास दिव्यकीर्ति, (फाउंडर, दृष्टि आईएएस)

पिछले कुछ दिनों की खबरों पर गौर करें तो साफ दिखता है कि लोकसभा चुनावों में यूनिफॉर्म सिविल कोड (यूसीसी) केंद्रीय मुद्दा रहने वाला है। पर यूसीसी क्या होता है- इसका सही-सही जवाब न आम हिंदू को पता है, न आम मुसलमान को। आम हिंदू की नजर में यह मुसलमानों की चार शादियां, तीन तलाक, लव जिहाद और बढ़ती आबादी को रोकने की तरकीब है। दूसरी ओर, आम मुसलमान की नजर में यह उसके मजहब के खिलाफ साजिश है। उन्हें लगता है यह लागू हो गया तो उन्हें भी अग्नि के फेरे लेकर निकाह करना होगा, लाशों को दफनाने की जगह जलाना होगा! इतना ही नहीं, हो सकता है दाढ़ी रखने और कुर्ता-पायजामा पहनने पर भी पाबंदी हो जाए!

गलतफहमियों के इस दौर में सच को समझना हमारा हक भी है और जिम्मेदारी भी। यूसीसी का यह मतलब नहीं है कि सब धर्मों की रस्में, रीति-रिवाज और पहनावे एक जैसे हो जाएंगे। इसका मतलब सिर्फ यह है कि जिस तरह आपराधिक मामलों (जैसे चोरी, डकैती, दुष्कर्म, हत्या) में सभी पर एक कानून लागू होता है, वैसे ही सिविल मामलों (जैसे विवाह, तलाक, गुजारा भत्ता, गोद लेना, संपत्ति का बंटवारा आदि) में भी सभी के लिए समान कानून होंगे। मुगल काल तक हिंदुओं, मुसलमानों तथा शेष समुदायों के लिए अलग-अलग कानून थे। अंग्रेजों ने 1861 में भारतीय दंड संहिता (आईपीसी) और 1882 में अपराध प्रक्रिया संहिता (सीआरपीसी) बनाकर आपराधिक कानूनों के मामले में सभी को बराबर बना दिया था। विधवा पुनर्विवाह और बाल-विवाह निषेध के लिए भी कानून बनाए, लेकिन इन मुद्दों की नजाकत को देखते हुए ज्यादा हस्तक्षेप नहीं किया।

आजादी की लड़ाई के दौरान हाशिए पर खड़े वर्गों ने बराबरी की मांग बुलंद करनी शुरू की। डॉ. आम्बेडकर ने यूसीसी का पुरजोर समर्थन किया ताकि स्त्रियों और दलितों को बराबरी का हक मिले। संविधान सभा में इस मुद्दे पर हंगामेदार बहस हुई। अंततः सहमति बनी कि इसे संविधान के भाग-4 अर्थात राज्य नीति के निदेशक तत्वों (डीपीएसपी) में रखा जाए। गौरतलब है कि भाग-4 में अनुच्छेद 36 से 51 तक का हिस्सा शामिल है। संविधान की भाषा में कहें तो यह भाग शासन के लिए आधारभूत महत्त्व का है किंतु इसमें लिखी बातों को अदालत से लागू नहीं कराया जा सकता। इसी भाग में अनुच्छेद-44 है, जो कहता है कि राज्य समान नागरिक संहिता के लिए प्रयास करेगा। यूसीसी का उद्देश्य है कि कोई भी नागरिक अपने धर्म या समुदाय के कानूनों की आड़ में शोषण या गैर-बराबरी का शिकार न हो। इस उद्देश्य को हासिल करने के दो तरीके थे। पहला यह कि एक झटके में सारे धर्मों के निजी कानूनों (पर्सनल लॉज़) को खारिज करते हुए सभी के लिए समान कानून बना दिया जाए। यह रास्ता उस समय के माहौल में खासा मुश्किल था। दूसरा रास्ता यह था कि शुरुआत में सभी धर्मों के निजी कानूनों में ही ऐसे संशोधन कर दिए जाएं कि वे प्रगतिशील व समतामूलक हो जाएं। उदाहरण के लिए, हिंदू समाज के कानूनों में संशोधन के लिए 'हिंदू कोड बिल' बनाया गया था।

आजादी के एकदम बाद बनी अंतरिम सरकार के सर्वदलीय मंत्रिमंडल में डॉ. आम्बेडकर कानून मंत्री थे। उन्होंने पूरी ताकत लगाई कि हिंदू कोड बिल पारित हो जाए, पर नेहरू जी का तर्क था कि इतना बड़ा कदम जनता द्वारा चुनी सरकार को ही उठाना चाहिए। उन्होंने 1951 के पहले आम चुनावों में यह मुद्दा जनता के सामने रखा और चुनाव जीतने के बाद 1955-56 में हिंदू कोड बिल को 4 कानूनों के रूप में पारित कराया। हिंदू मैरिज एक्ट (1955), हिंदू सक्सेशन एक्ट (1956) भी उन्हीं में शामिल थे। उस समय हिंदू समाज के कुछ रूढ़िवादी नेताओं ने इनका विरोध किया पर नेहरू जी अडिग रहे।

किंतु नेहरू जी की सरकार ने जिस शिद्दत से हिंदू समाज के लिए प्रगतिशील कानून पारित किए, वैसी ताकत मुस्लिम समाज के मामले में नहीं दिखाई। शरीयत एप्लिकेशन एक्ट बरकरार रहा, जो चार निकाह, तीन तलाक, हलाला जैसी प्रथाओं को वैध बनाता था। शाह बानो (1985) मामले में सुप्रीम कोर्ट ने एक प्रगतिशील निर्णय दिया किंतु राजीव गांधी की सरकार ने 'मुस्लिम वीमेन (प्रोटेक्शन) एक्ट' (1986) पारित करके उसे शून्य कर दिया। ऐसा नहीं है कि यूसीसी के विषय में अभी तक कुछ नहीं हुआ है। सिविल मामलों पर कई ऐसे कानून बने हैं, जो सभी धर्मों के लिए समान हैं, जैसे 1954 का विशेष विवाह अधिनियम, 1961 का दहेज प्रतिषेध अधिनियम और 2005 का घरेलू हिंसा अधिनियम इत्यादि। सुप्रीम कोर्ट के कुछ ऐतिहासिक निर्णयों ने भी काफी हद तक समान कानून लागू किए हैं। समय आ गया है कि हम दुनिया के बाकी सभ्य व विकसित समाजों की तरह अपने देश में भी यूसीसी लाएं। सुप्रीम कोर्ट कई बार इसके पक्ष में सलाह दे चुका है। सरकार दृढ़ इच्छाशक्ति दिखा रही है, लगता है अब यह हकीकत बन जाएगा।

Date:08-07-23

अब देश के छोटे शहरों पर है मैन्युफेक्चरिंग क्षेत्र की नजर

पंकज बंसल, (डिजिटल रिक्रूटमेंट प्लेटफॉर्म और पीपुल स्ट्रांग के सह-संस्थापक)

प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने अकारण नहीं कहा था कि दुनिया अब भारत को एक मैन्युफेक्चरिंग पॉवरहाउस की तरह देख रही है। टीयर-2 शहरों के प्रमुख टैलेंट हब के रूप में उदय, उनमें इंफ्रास्ट्रक्चर और अपस्किलिंग के अवसरों में बढ़ोतरी से भारत के जॉब-मार्केट में विविधता आई है और टीयर-1 शहरों पर निर्भरता घटी है। टैग्ड की डिकोडिंग जॉब्स रिपोर्ट के अनुसार भारत की इंजीनियरिंग और मैन्युफेक्चरिंग इंडस्ट्री की 40 प्रतिशत कार्यशक्ति टीयर-1 शहरों से मिलेगी, जबकि शेष 60 प्रतिशत छोटे शहरों या कस्बों से। अभी तक दिल्ली, मुम्बई, पुणे, बेंगलुरू, चेन्नई, हैदराबाद, अहमदाबाद ही मैन्युफेक्चरिंग और इंजीनियरिंग इकाइयों के लिए सबसे प्रमुख शहर हुआ करते थे। इनमें भी 2022 तक दिल्ली सबसे ऊपर थी और 72 प्रतिशत कम्पनियां दिल्ली से ही किसी को नौकरी पर रखना चाहती थीं। लेकिन अब कोयम्बटूर, वडोदरा, नाशिक जैसे शहर भी इस सेक्टर में लोकप्रिय होते जा रहे हैं।

नॉन टियर-2 शहरों के इस बढ़ते प्रभाव के अनेक कारण हैं। छोटे शहरों की किफायती और कुशल कार्यशक्ति उन्हें उन कम्पनियों के लिए एक आदर्श मुकाम बना देती हैं, जो अपने दायरे को बढ़ाना चाहती हैं। महंगाई और बढ़ती ब्याज दरों के कारण पूरी दुनिया में आज कारोबार की लागतें बढ़ गई हैं। छोटे शहरों में संसाधनों और कार्यशक्ति का कम लागत में उपलब्ध होना उनकी बढ़ती लोकप्रियता का प्रमुख कारण है। मेट्रो शहरों की तुलना में टीयर-2 और टीयर-3 शहरों में प्रतिभाशाली पेशेवरों के लिए प्रतिस्पर्धा भी कम है। इन शहरों का टैलेंट-पूल बढ़ रहा है, क्योंकि अब छोटे शहरों के युवाओं को भी बड़े शहरों में जाए बिना बेहतर शैक्षिक सुविधाएं मिल रही हैं। ऐसे में जो कारोबार-समूह छोटे शहरों में अपने कारोबार का विस्तार करना चाहते हैं, उन्हें कुशल पेशेवरों की आपूर्ति सुनिश्चित हो जाती है। बदल रहे परिदृश्य से वे स्थानीय प्रतिभाओं का भरपूर लाभ उठा पाते हैं।

एक अहम फैक्टर यह है कि भारत सरकार ने छोटे शहरों में बुनियादी ढांचे के विकास में बड़े पैमाने पर निवेश किया है और औद्योगिक क्षेत्रों के निर्माण और उनकी कनेक्टिविटी पर विशेष ध्यान दिया है। क्षेत्रीय कनेक्टिविटी पर केंद्रित सरकार की उड़ान योजना के कारण घरेलू हवाई यात्रियों की संख्या में खासी वृद्धि हुई है और अब टीयर-2 और टीयर-3 शहर भी हवाई मार्गों से जुड़ने लगे हैं। साथ ही इन शहरों में को-वर्किंग स्पेस भी तेजी से लोकप्रिय हो रहे हैं, जिससे कम्पनियों के लिए उनमें अपने काम को फैलाना और वहां हायरिंग करना सरल हो गया है। वर्ष 2020 की ईज़ ऑफ लिविंग रिपोर्ट में अहमदाबाद, कोयम्बटूर, इंदौर, सूरत और वडोदरा को अग्रणी टीयर-2 शहरों में पाया गया था। हवा की बेहतर गुणवत्ता और प्रदूषण के कम स्तरों के चलते भी ये शहर कारोबारियों के पसंदीदा बनते जा रहे हैं।

भारत के गैर-मेट्रो शहरों में हाल के सालों में बढ़ती आमदनी और सेवाओं-उत्पादों पर बेहतर पहुंच के चलते उपभोग में बढ़ोतरी देखी गई है। कम्पनियों की नजर इस बढ़ते हुए बाजार पर भी है और वे इन शहरों से प्रतिभागियों को नौकरियां देकर एक बड़े ग्राहक-आधार से जुड़ना चाहती हैं। छोटे शहरों में मैन्युफेक्चरिंग हब्स की तादाद भी बढ़ रही है। साथ ही उनमें पहले से अधिक संख्या में इंजीनियरिंग और प्रबंधन-स्कूल खुल रहे हैं, जिससे नौकरियों की तलाश करने वालों को

बेहतर अवसर मिल रहे हैं। मैन्युफेक्चरिंग कम्पनियां छोटे शहरों में हर स्तर पर लोगों को नौकरियों पर रख रही हैं, जिसमें जूनियर स्तर के 78.81 प्रतिशत और मिडिल स्तर के 17.8 प्रतिशत कर्मचारियों को नौकरी दी जा रही है।

मैन्युफेक्चरिंग और इंजीनियरिंग सम्बंधी भूमिकाओं के लिए जूनियर और मिडिल स्तर के प्रतिभागियों को नौकरी पर रखने के मामले में कोयम्बटूर सबसे आगे है। इस शहर में इलेक्ट्रिक व्हीकल सेक्टर के भी तेजी से बढ़ने की अपेक्षा है, जिससे नौकरियों के और अवसर निर्मित होंगे। वहीं ठाणे सीनियर स्तर के कर्मचारियों को नौकरी देने के मामले में अव्वल है। मैन्युफेक्चरिंग और इंजीनियरिंग सम्बंधी नौकरियों के लिए अन्य महत्वपूर्ण शहर जयपुर, वडोदरा, चंडीगढ़, इंदौर और नाशिक हैं। दीर्घकालीन समाधानों की खोज के लिए अनेक मैन्युफेक्चरिंग कम्पनियां हाइब्रिड वर्क-मॉडल बनाने की दिशा में भी काम कर रही हैं, ताकि एक बेहतर और लचीली कार्य-व्यवस्था के लिए पेशेवरों की मांग पूरी कर सकें। अगस्त 2022 से अब तक मैन्युफेक्चरिंग क्षेत्र ने तकरीबन 50,000 नई नौकरियां निर्मित की हैं और इनमें इजाफा ही हो रहा है। मैन्युफेक्चरिंग और इंजीनियरिंग सेक्टर में नौकरियों की तलाश करने वाले पेशेवरों के लिए बहुत सम्भावनाएं हैं।

दैनिक जागरण

Date:08-07-23

शहरीकरण की चुनौतियां

संपादकीय

अहमदाबाद में मेयर सम्मेलन में उचित ही इस निष्कर्ष पर पहुंचा गया कि हमारे शहर देश का भाग्य तय करेंगे। यह बात जितनी सही दुनिया के लिए है, उतनी ही देश के लिए भी। आज सभी नीति-नियंता इस पर एकमत हैं कि शहर विकास के इंजन हैं। अन्य देशों की तरह भारत में भी शहरीकरण की गति बहुत तेज है। इस तेज गति ने शहरीकरण की चुनौतियां बढ़ा दी हैं। नगर निकाय शहरों में रहने वालों की आवश्यकताओं और अपेक्षाओं को पूरा नहीं कर पा रहे हैं। शहरों में जिस अनुपात में जनसंख्या का दबाव बढ़ता चला जा रहा है, उस हिसाब से बुनियादी ढांचे का विकास नहीं हो पा रहा है। जो विकास हो भी रहा है, वह नियोजित नहीं है। अनियोजित विकास शहरों की समस्याएं बढ़ा रहा है। अनियोजित विकास शहरी जीवन को कष्टप्रद तो बना ही रहा है, शहरों के विकास में बाधक भी बन रहा है। यदि देश को तेजी से आर्थिक प्रगति करनी है तो उसे अपने शहरों की दशा संवारनी ही होगी। हमारे छोटे-बड़े शहर गंदगी, प्रदूषण, ट्रैफिक जाम और लोगों की रोजमर्रा की जिंदगी को तनाव देने वाली समस्याओं से घिरते जा रहे हैं। अपने देश के शहरों में सार्वजनिक यातायात के साधन भी संतोषजनक नहीं। इन्हीं सब कारणों से कुछ लोग शहरों से दूर रहने का विकल्प चुनने को बाध्य हो रहे हैं।

शहरीकरण को लेकर बातें तो खूब होती हैं, लेकिन इस पर पर्याप्त ध्यान नहीं दिया जा रहा है कि उनका समुचित विकास कैसे हो। शहरीकरण संबंधी ज्यादातर योजनाएं समस्याओं का फौरी निदान करने वाली होती हैं। इसके चलते जो फ्लाईओवर, अंडरपास, बाईपास आदि बनते हैं या फिर नए मोहल्ले बसाए जाते हैं, वे कुछ ही समय बाद समस्याओं से

घिर जाते हैं। स्पष्ट है कि टाउन प्लानर उस दूरदर्शिता का परिचय नहीं दे रहे हैं, जो आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य है। शहरी जीवन को आरामदायक बनाने और शहरों को आर्थिक विकास में अधिकाधिक भागीदार बनाने में नगर निकायों की सबसे महत्वपूर्ण भूमिका है, लेकिन उनके ज्यादातर कार्य कामचलाऊ ही होते हैं। एक समस्या यह भी है कि वे भ्रष्टाचार और संकीर्ण दलगत राजनीति के साथ अन्य अनियमितताओं से ग्रस्त हैं। यह उनकी लचर कार्यप्रणाली का ही परिणाम है कि वे शहरों के विकास के लिए अपने बलबूते संसाधन भी नहीं जुटा पाते। क्या यह विचित्र नहीं कि एक ओर शहरों को संवारने की बातें की जाती हैं और दूसरी ओर यह देखने को मिलता है कि उनमें झुग्गी बस्तियां बढ़ती जाती हैं? नगर निकायों के कामों की गुणवत्ता का स्तर भी गया-बीता है। समझना कठिन है कि सड़कें बनने के साथ ही खराब क्यों हो जाती हैं? सड़कों के साथ अन्य सार्वजनिक स्थल अतिक्रमण का भी शिकार होते रहते हैं। यह भी देखने में आता है कि एक ही शहर के अलग-अलग इलाकों के विकास के मामले में भिन्न-भिन्न मानक अपनाए जाते हैं।

बिज़नेस स्टैंडर्ड

Date:08-07-23

आरक्षण से लेकर प्रतिभा तक की चर्चा

आर जगन्नाथन, (लेखक स्वराज्य पत्रिका के संपादकीय निदेशक हैं)

भारत और विश्वभर में समावेशन और समता को लेकर गलत प्रकार की बहस हो रही है। अमेरिका में सर्वोच्च न्यायालय ने हाल ही में 6-3 के बहुमत से दो शैक्षणिक संस्थानों में नस्ल आधारित आरक्षण (अफर्मेटिव ऐक्शन) को समाप्त कर दिया। ये संस्थान हैं हार्वर्ड और नॉर्थ कैरोलाइना विश्वविद्यालय। परंतु ऐसे वक्त जब अदालतें भी दशकों की 'प्रगतिशील कानून निर्माण' की प्रक्रिया को पलट रही हैं, राजनेता जाति को एक और भेदभाव के एक और प्रकार के रूप में शामिल करने का प्रयास कर रहे हैं। यानी वे भारतीय समस्या को अमेरिका में पैदा कर रहे हैं जबकि उनकी न्यायपालिका कह रही है कि नस्ल के आधार पर आरक्षण नहीं किया जा सकता। भारत में हम विपरीत दिशा में जा रहे हैं और हमारे यहां कोटा इंदिरा साहनी मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा तय 49 फीसदी की सीमा भी पार कर रहा है।

अभी हाल ही में एक अन्य पीठ ने इस सीमा का उल्लंघन किया और आर्थिक रूप से कमजोर तबकों के लिए 10 फीसदी के अतिरिक्त आरक्षण का प्रावधान किया। अन्य पिछड़ा वर्ग की जनगणना की चर्चा चल रही है जबकि उसके बाद कोटा सीमा और बढ़ेगी।

यह मामला अमेरिका के सही या भारत के गलत होने का नहीं है। हम आंख मूंदकर उन लोगों के साथ एक खास किस्म का न्याय करना चाहते हैं। इसे कॉस्मिक जस्टिस कहा जा सकता है। अमेरिकी अर्थशास्त्री थॉमस सॉवेल ने यह शब्द उन लोगों के लिए इस्तेमाल किया था जिन्हें हम वंचित मानते हैं। लेकिन इस बीच हम सामाजिक और आर्थिक पिछड़ेपन की वास्तविक चुनौतियों का सामना नहीं कर रहे हैं। कुछ समूहों को अंतहीन कोटा देकर हम शायद उनका अमानवीयकरण कर रहे हैं क्योंकि इसकी मदद से उन्हें स्थायी रूप से पीड़ित की छवि प्रदान की जा रही है। यह दीर्घावधि में उनके लिए नुकसानदायक होगा। पश्चिम के उदारवादी जिनमें से अधिकांश श्वेत हैं, वे यही यकीन करना चाहेंगे कि नस्लवाद और

शोषण आदि ढांचागत प्रकृति के हैं और उनका अंत केवल तभी हो सकता है जब भेदभाव को गैर श्वेतों के पक्ष में पलटा जा सके। भारत में हम भी इसी बात पर यकीन करते हैं। हम जाति आधारित असमानता का अंत चाहते हैं लेकिन बिना किसी ठोस प्रमाण के हमने यह नतीजा निकाल लिया है कि ऐसा करने का एकमात्र तरीका कोटा, आरक्षण और पुरानी व्यवस्था के खिलाफ सक्रिय भेदभाव है। अब हमने जीवन के हर पहलू में जाति को शामिल कर लिया है। यह प्रगति कैसे हुई?

समावेशन या समता को लेकर किसी को प्रश्न नहीं करना चाहिए लेकिन यूरोपीय जागरण, अमेरिकी गृहयुद्ध और जातिवाद के खिलाफ हमारी लंबी लड़ाई के बाद भी हमारे पास कोटा या अफर्मेटिव ऐक्शन का कोई सही विकल्प क्यों नहीं है?

एक कहावत से शुरुआत करते हैं। कार्ल मार्क्स ने 1875 में जर्मनी की सोशल डेमोक्रेटिक वर्कर्स पार्टी (जिससे वह जुड़े थे) को लिखे पत्र में कहा था कि कम्युनिज्म का एक मात्र लक्ष्य है: हर व्यक्ति अपनी क्षमता के मुताबिक काम करे और हर व्यक्ति को उसकी जरूरत के बराबर मिले। यह पंक्ति उल्लेखनीय है। केवल इसलिए नहीं कि यह कोई अहम बात कहती है बल्कि इसलिए भी कि व्यवहार में मार्क्सवाद ने इस बात के दूसरे हिस्से पर अधिक तवज्जो दी है यानी पुनर्वितरण वाले पहलू पर। मार्क्स मानते थे कि एक गैर शोषणकारी समाज वाले उनके आदर्श राज्य की कल्पना तभी साकार होगी जब नियंत्रण सर्वहारा के पास होगा लेकिन हम जानते हैं कि सर्वहारा की तानाशाही में दोनों में से कुछ भी हासिल नहीं होता।

इससे केवल एक नया शोष कुलीन वर्ग तैयार हुआ। मार्क्स एक बुनियादी सवाल करने से चूक गए: क्या एक तानाशाही में एक व्यक्ति अपनी क्षमताओं का पूरा इस्तेमाल कर सकता है।

उदारवाद की दिक्कत यह है कि यह मार्क्सवाद की दमनक और दमित की अवधारणा में यकीन करता है। अमेरिका और भारत के उदारवादी प्रतिष्ठान विचारों की एक तानाशाही तलाश कर रहे हैं ताकि अपने एजेंडा आगे बढ़ाए जा सकें। विविधता में कमी आ रही है।

मार्क्सवादी आदर्श की बात करें तो सवाल यह है कि हम व्यक्तिगत क्षमता का अधिकतम लाभ कैसे ले सकते हैं। वह भी उन लोगों के योगदान को ध्यान में रखते हुए जिनका योगदान कम महत्त्वपूर्ण है। अंतिम लक्ष्य है एक संतुलित, स्थिर और एक दूसरे का ख्याल रखने वाला समाज तैयार करना, न कि किसी विचारधारा की जीत या हार।

यहां ये सवाल भी पैदा हो सकते हैं कि क्या कोई समाज बिना समावेशन और योग्यता के दोहरे लक्ष्यों में संतुलन कायम किए बिना अपनी उत्पादक क्षमताओं का पूरा इस्तेमाल कर सकती है?

क्या बड़ी कंपनियां या संगठन या समाज समावेशन या समता की तलाश में प्रतिभा की अनदेखी करके तैयार हो सकते हैं? क्या हमारे आईआईटी, आईआईएम, इसरो, एचडीएफसी बैंक या इन्फोसिस प्रतिभा की अनदेखी करके विश्वस्तरीय संस्थान बने?

हमें यह भी पूछना चाहिए: योग्यता दरअसल क्या है? क्या इसका अर्थ अपनी सर्वश्रेष्ठ प्रतिभाओं का इस्तेमाल करना है या फिर किसी कठिन परीक्षा द्वारा खड़े किए गए कृत्रिम मानक को पूरा करना? उदाहरण के लिए अगर हम योग्यता को

आईआईटी-जेईई, नीट या कैट की परीक्षा पास करने वालों से मिलाएं तो हम योग्यता को कुछ खास चीजों तक सीमित करके देखते हैं। परंतु कई आईआईटी इंजीनियर सॉफ्टवेयर की नौकरी करते हैं, न कि अच्छी गुणवत्ता वाला इंजीनियरिंग का काम। संक्षेप में हम योग्यता और इंजीनियरिंग प्रतिभाएं नहीं चुन रहे हैं बल्कि बिना योग्यता के उच्च वेतन वाली नौकरी की अर्हता पूरी कर रहे हैं।

सन 1999 में आई किताब फर्स्ट, ब्रेक ऑल द रूल्स में लेखक मार्कस बकिंघम और कर्ट कॉफमैन कहते हैं कि दुनिया के महान प्रबंधकों ने अपना सर्वश्रेष्ठ प्रदर्शन ऐसी निरपेक्ष परीक्षा प्रणाली में नहीं किया बल्कि यह दर्ज करके किया कि कैसे व्यक्ति ही अपनी आंतरिक प्रतिभा का सटीक इस्तेमाल करके ऐसे काम पूरा कर सकते हैं जिनके लिए उसी तरह की प्रतिभा की आवश्यकता होती है। इस आदर्श व्यवस्था में एक प्रतिभाशाली व्यक्ति मिसाल के तौर पर एक अच्छा सेल्समैन पदोन्नत होकर कभी वाइस प्रेसिडेंट (सेल्स) या सीईओ नहीं बन पाएगा लेकिन उस काम को बेहतर ढंग से करने के लिए उसे पुरस्कृत अवश्य किया जाएगा। यह बात हर व्यक्ति से सर्वश्रेष्ठ हासिल करने के मार्क्सवादी आदर्श के करीब ठहरती है। सच्ची योग्यता प्रतिभा और उत्पादकता का पदानुक्रम तैयार करती है।

समावेशन और समता को कोटा से नहीं बल्कि यह चिह्नित करके हासिल किया जा सकता है कि कौन सी प्रतिभा, हर व्यक्ति से बेहतरीन नतीजे हासिल करने की दृष्टि से अच्छी है।

वंचित वर्ग के जो युवा सही मायनों में प्रतिभाशाली हैं, उन्हें बेहतर मार्गदर्शन, वित्तीय सहायता और सहयोग की आवश्यकता है ताकि वे बेहतरीन लोगों के साथ प्रतिस्पर्धा कर सकें। अंतहीन कोटा और आरक्षण से बात नहीं बनेगी। उन्हें उद्यमी बनने के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए, न कि सरकारी नौकरी पर निर्भर रहने देना चाहिए। सात दशकों से हम निरंतर यह संदेश देते रहे हैं कि नौकरियों के लिए समूह की पहचान जरूरी है।

बाबा साहब आंबेडकर इसका अच्छा उदाहरण हैं। उनके बेहतरीन सामाजिक और बौद्धिक योगदान उनके अपने प्रयासों का नतीजा था। उनके प्रति सदिच्छा रखने वालों ने भी कुछ योगदान किया था।

कुछ समय तक कोटा अपरिहार्य हो सकता है लेकिन अंतत: कोटा प्रतिभा और योग्यता को नष्ट करता है। हमें ऐसी प्रारंभिक परियोजनाएं शुरू करनी चाहिए कि ताकि कोटा समाप्त होने के बाद के वक्त के लिए बेहतर विकल्प तैयार हो सके। कोटा व्यवस्था के रहते अगले आंबेडकर तैयार नहीं हो पाएंगे।

जनसत्ता

Date:08-07-23

घटते वन, बढ़ती समस्याएं

योगेश कुमार गोयल

भारत में प्रतिवर्ष पर्यावरण संरक्षण के उद्देश्य से जुलाई माह के पहले सप्ताह में 'वन महोत्सव' मनाया जाता है। वन महोत्सव का अर्थ है वृक्षों का महाउत्सव यानी पेड़ों का त्योहार, जो प्राकृतिक परिवेश तथा पर्यावरण संरक्षण के प्रति संवेदनशीलता अभिव्यक्त करने वाला एक आंदोलन है। दरअसल, प्रकृति के असंतुलन का सबसे बड़ा कारण वनों तथा वन्य जीवों की घटती संख्या है, इसीलिए इनके संरक्षण हेतु दिल्ली में सघन वृक्षारोपण के लिए आंदोलन की अनौपचारिक शुरुआत जुलाई 1947 में ही हो गई थी, लेकिन देशभर में वृक्षारोपण को प्रोत्साहन देने के उद्देश्य से 'वन महोत्सव' की शुरुआत 1950 में भारत के तत्कालीन कृषिमंत्री कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी द्वारा की गई थी। दरअसल, वन न केवल जीव-जंतुओं की हजारों-लाखों प्रजातियों के प्राकृतिक आवास हैं, बल्कि प्रकृति और मानव जीवन में संतुलन बनाए रखने में भी इनकी भूमिका सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है।

यही कारण है कि पर्यावरण विशेषज्ञों द्वारा वन क्षेत्रों के विस्तार के लिए गंभीर प्रयासों की जरूरत पर जोर दिया जा रहा है। मानव जीवन में वनों की महत्ता और पर्यावरण संरक्षण में वनों की भूमिका को लेकर आज व्यापक जन-जागरण अभियान की जरूरत है, ताकि आमजन को आभास हो कि मानव जीवन के लिए वन किस प्रकार लाभदायक हैं। विडंबना है कि इस समय पूरी दुनिया में धरती पर केवल तीस फीसद हिस्से में वन शेष बचे हैं और उनमें से भी प्रतिवर्ष इंग्लैंड के आकार के बराबर नष्ट हो रहे हैं।

वनों की कटाई से पर्यावरण पर तो भयानक दुष्प्रभाव पड़ता ही है, वन्यजीवों के अस्तित्व पर भी संकट के बादल मंडरा रहे हैं। पर्यावरण वैज्ञानिकों का कहना है कि अगर इसी प्रकार वनों की कटाई जारी रही, तो अगले सौ वर्षों बाद दुनिया भर में 'रेन फारेस्ट' पूरी तरह खत्म हो जाएंगे। दुनिया के कुल बीस देशों में ही चौरानबे फीसद जंगल हैं, जिनमें रूस, कनाडा, आस्ट्रेलिया, अमेरिका, ब्राजील, फ्रांस, चीन, न्यूजीलैंड, अल्जीरिया, लीबिया, डेनमार्क, नाइजर, मारीशस, माली, नार्वे, भारत, ब्रिटेन, ग्रीनलैंड, मिस्र शामिल हैं। क्वींसलैंड विश्वविद्यालय द्वारा वन दायरे का जो मानचित्र जारी किया गया, उसके अनुसार विश्व के पांच देश ऐसे हैं, जिनमें दुनिया के सत्तर फीसद जंगल सिमटकर रह गए हैं। भारत का कुल क्षेत्रफल करीब बत्तीस लाख वर्ग किलोमीटर है, और जंगलों के कम होते जाने के मामले में चिंताजनक स्थिति यह है कि 1993 से 2009 के बीच ही विश्वभर में भारत के क्षेत्रफल के बराबर तैंतीस लाख वर्ग किलोमीटर जंगल खत्म हो चुके हैं।

जहां तक भारत की बात है, वन क्षेत्र के मामले में भारत दुनिया में दसवें स्थान पर है। दो-तीन वर्ष पूर्व 'फारेस्ट सर्वे आफ इंडिया' की एक रिपोर्ट में बताया गया था कि भारत में वन क्षेत्र 8,02,088 वर्ग किलोमीटर क्षेत्रफल में फैला हुआ है, जो भारत के कुल क्षेत्रफल का करीब 24.39 फीसद है, लेकिन हाल ही में भारत वन स्थिति रिपोर्ट (आइएसएफआर) 2021 में बताया गया है कि भारत में देश के कुल भौगेलिक क्षेत्र का अब केवल 21.72 फीसद वन क्षेत्र है। 'इंडियन स्टेट आफ फरेस्ट रिपोर्ट 2017' में बताया गया था कि भारत में 2015 से 2017 के बीच वन क्षेत्र में 0.2 फीसद की वृद्धि हुई, मगर पर्यावरण विशेषज्ञों के मुताबिक यह वृद्धि केवल 'ओपन फारेस्ट श्रेणी' का ही हिस्सा है, जो प्राकृतिक वन क्षेत्र में वृद्धि न होकर वाणिज्यिक बागानों के बढ़ने के कारण हुई है। वर्तमान नीति के अनुसार मृदा क्षरण तथा भू-विकृतिकरण रोकने के लिए पर्वतीय क्षेत्रों के कुल भौगोलिक क्षेत्रफल का न्यूनतम 66 फीसद हिस्सा वनाच्छादित होना चाहिए, लेकिन अगर आंकड़े देखें तो देश के सोलह पर्वतीय राज्यों और केंद्रशासित प्रदेशों में फैले 127 पहाड़ी जिलों में

कुल क्षेत्रफल के चालीस फीसद हिस्से ही वनाच्छादित हैं, जिनमें जम्मू-कश्मीर, महाराष्ट्र तथा हिमाचल प्रदेश के पहाड़ी जिलों का सबसे कम, क्रमश: 15.79, 22.34 तथा 27.12 फीसद हिस्सा ही वनाच्छादित है। हालांकि देशभर में सर्वाधिक जंगल महाराष्ट्र, मध्यप्रदेश तथा छत्तीसगढ़ में हैं, लेकिन विकास कार्यों में तेजी, कृषि भूमि तथा डूब क्षेत्र में वृद्धि, खनन प्रक्रिया में बढ़ोतरी आदि कारणों से पिछले कुछ वर्षों में इन राज्यों में भी जंगल घटे हैं।

भारत वन स्थिति रिपोर्ट 2021 के अनुसार देश के पूर्वोत्तर में वन लगातार घट रहे हैं और इसमें मणिपुर में सर्वाधिक कमी दर्ज की जा रही है। इस रिपोर्ट के मुताबिक पूर्वोत्तर वन आवरण 2017 के मुकाबले 1785 वर्ग किलोमीटर कम हुआ है। हालांकि कुल भौगोलिक क्षेत्र के प्रतिशत के रूप में वन आवरण के मामले में पूर्वोत्तर के शीर्ष पांच राज्यों में मिजोरम, अरुणाचल प्रदेश, मेघालय, मणिपुर और नगालैंड शामिल हैं, लेकिन पूर्वोत्तर के वन सघन इन राज्यों में भी वन आवरण कम हो रहा है।आइएसएफआर 2021 रिपोर्ट के अनुसार 2017 में अरुणाचल प्रदेश में 66,964, असम में 28,105, मणिपुर में 17,346, मेघालय में 17,146, मिजोरम में 18,186, नगालैंड में 12,251, त्रिपुरा में 7,726 और सिक्किम में 3,344 वर्ग किलोमीटर वन क्षेत्र था, जो 2021 में क्रमश: 66,431, 28,312, 16,598, 17,046, 17,820, 12,489, 7,722 और 3,341 वर्ग किलोमीटर रह गया। पूर्वोत्तर में केवल असम ऐसा राज्य है, जहां पिछले चार वर्षों में 207 वर्ग किलोमीटर वन क्षेत्र बढ़ा है, बाकी राज्यों में अरुणाचल में 533, मणिपुर में 748, मिजोरम में 366, नगालैंड में 238, मेघालय में 100, त्रिपुरा में 4 और सिक्किम में 3 वर्ग किलोमीटर वन क्षेत्र कम हुआ है।

आइएसएफआर की 2011 और 2021 की रिपोर्ट की तुलना करें तो पता चलता है कि इन दस वर्षों में अहमदाबाद में तो वन आवरण आधा रह गया है, जबकि दिल्ली, चेन्नई, हैदराबाद और मुबई के वन क्षेत्र में वृद्धि हुई है। दिल्ली में इस अवधि में वन क्षेत्र 2011 के 174.33 वर्ग किलोमीटर से बढ़कर 194.24, हैदराबाद में 33.15 से 81.81, मुंबई में 101.54 से 110.77, चेन्नई में 18.02 से 22.70 वर्ग किलोमीटर हो गया है, जबकि अहमदाबाद में 2011 के 17.96 वर्ग किलोमीटर से घटकर 9.41, बंगलुरू में 94 से 89.02 और कोलकाता में 2.52 से घटकर 1.77 वर्ग किलोमीटर रह गया है।

भारतीय वन सर्वेक्षण की एक रिपोर्ट के अनुसार देश में सघन वनों का क्षेत्रफल घट रहा है। 1999 में सघन वन 11.48 फीसद थे, जो 2015 में घटकर मात्र 2.61 फीसद रह गए। सघन वनों का दायरा सिमटते जाने के चलते ही वन्यजीव शहरों-कस्बों का रुख करने पर विवश होने लगे हैं और इसी के चलते जंगली जानवरों की इंसानों के साथ मुठभेड़ की घटनाएं बढ़ रही हैं। भारत में स्थिति बदतर इसलिए है, क्योंकि एक तरफ जहां वृक्षों की अवैध कटाई का सिलसिला बड़े पैमाने पर चलता रहा है, वहीं वृक्षारोपण के मामले में उदासीनता और लापरवाही बरती जाती रही है। किसी भी विकास योजना के नाम पर पेड़ काटे जाते समय विरोध होने पर सरकारी एजेंसियों द्वारा तर्क दिए जाते हैं कि जितने पेड़ काटे जाएंगे, उसके बदले दस गुना वृक्ष लगाए जाएंगे, पर वृक्षारोपण और रोपे जाने वाले पौधों की देखभाल के मामले में सरकारी निष्क्रियता जगजाहिर है। वायु प्रदूषण हो या जल प्रदूषण अथवा भू-क्षरण, इन समस्याओं से केवल ज्यादा से ज्यादा वृक्ष लगाकर ही निपटा जा सकता है। स्वच्छ प्राणवायु के अभाव में लोग तरह-तरह की भयानक बीमारियों के जाल में फंस रहे हैं, उनकी प्रजनन क्षमता पर इसका दुष्प्रभाव पड़ रहा है, उनकी कार्यक्षमता भी प्रभावित हो रही है। मौसम चक्र तेजी से बदल रहा है, जलवायु संकट गहरा रहा है। ऐसे में पर्यावरणीय समस्याओं से निपटने का एक ही उपाय है, वृक्षों की सघनता यानी वन क्षेत्र में बढ़ोतरी।

राष्ट्रीय सहारा

Date:08-07-23

कुंवारों को भी भत्ता

संपादकीय

हरियाणा सरकार ने अब अविवाहितों को प्रति माह 2,750 रुपये की पेंशन देने का निर्णय लिया है। इनमें विधवा व विधुर भी शामिल हैं। ऐसा करने वाला हरियाणा देश का पहला राज्य बन गया है। इस अविवाहित पेंशन स्कीम के दायरे में 45 से 60 आयु वाले स्त्री-पुरुष होंगे, जिनकी वार्षिक आय 1.80 लाख से कम हो। विधुर व विधवा के लिए आयु सीमा 40 से 60 है पर उनकी वार्षिक आय 3 लाख से कम होनी चाहिए। मुख्यमंत्री मनोहर लाल खट्टर ने करनाल में आयोजित जनसंवाद कार्यक्रम में यह ऐलान किया। वहां इस दायरे में आने वाले अविवाहित पुरुषों व महिलाओं की संख्या तकरीबन 65 हजार है, जबकि विधवाओं-विधुरों की संख्या 5,687 है। इस योजना से सरकार पर 20 करोड़ रुपये का मासिक बोझ पड़ेगा। बावजूद इसके एकाकीपन झेलने वालों को राहत जरूर मिलेगी। सरकार द्वारा तय राशि की सीमा हालांकि 15 हजार रुपये से कम मासिक आय वाले कुंवारों पर लागू होगी। इस वर्ग के लिए पौने तीन हजार रुपये की मदद कोई मायने नहीं रखती। मगर जिन राज्यवासियों के पास आमदनी का कोई सहारा नहीं है और जो बिल्कुल अकेले हैं या परिवार पर आश्रित हैं। उनके लिए यह पेंशन बहुत राहतकारी होगी। खासकर किन्हीं कारणों से अविवाहित रह गयीं या बेवा स्त्रियों के लिए यह रकम विशेष मददगार साबित हो सकती है। बशत्रे जरूरतमंदों के चयन में कोताही न हो और सुपात्रों को इसके लिए भटकना न पड़े। अपने यहां सरकारें बेहतर योजनाओं का ऐलान तो कर देती हैं। परंतु लाभार्थियों तक उनका पहुंचना दुष्कर हो जाता है। वे महीनों सरकारी दफ्तरों के चक्कर काटते रह जाते हैं या दलालों के चंगुल में फंसकर लाभ के बंदरबांट पर मजबूर हो जाते हैं। हमें यह नहीं भूलना है कि हरियाणा में स्त्री-पुरुष के अनुपात में सर्वाधिक अंतर होने के कारण विवाह के लिए लड़कियों का अकाल भी रहा है। ऐसे में सरकार की यह सदाशयता स्वागतेय है। इसके साथ ही इन सब लोगों का स्वास्थ्य बीमा कर वृद्धावस्थाजन्य बीमारियों के इलाज का भी जिम्मा लेना चाहिए। विशेषकर सरकारी अस्पतालों व चिकित्सा केन्द्रों में इनके लिए अतिरिक्त व्यवस्था हो ताकि वे निश्चिंत हो कर बेहतर स्वास्थ्य लाभ ले सकें।